☆ गांधी जी की अंग्रेज–भक्ति

दया प्रकाश सिन्हा
आई.ए.एस. (अवकाश प्राप्त)

सन् 1914 में जब गांधीजी अफ्रीका छोड़कर सदा के लिए भारत को प्रस्थान कर रह थे तो उन्होंने वहाँ के सर्वोच्च अंग्रेज शासक जनरल स्मट्स को स्वयं अपने हाथ से बनाई चमड़े की चप्पल विदाई–भेंट के रूप में भेजी। यह तथ्य प्रतीक–रूप में गांधीजी की अंग्रेजों के प्रति उनकी भावना को अत्यन्त मुखरता से रूपायित करता है।

गांधीजी स्वभावतः राजनिष्ठ थे। उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए अपनी आत्मकथा ''सत्य के प्रयोग'' में लिखा है –*''शुद्ध राजनिष्ठा जितनी मैंने अपने अन्दर पाई है, उतनी शायद ही दूसरे में देखी हो। नेटाल, दक्षिण अफ्रीका में जब मैं किसी सभा में जाता तो वहां ''गॉड सेव द किंग'' अवश्य गाया जाता। मैंने सोचा मुझे भी अवश्य उसे गाना चाहिए। ब्रिटिश राजनीति में दोष तो मैं उस समय भी देखता था। फिर भी कुल मिलाकर मुझे वह नीति अच्छी लगती थी। मैं उस समय मानता था कि ब्रिटिश शासन और शासकों का झुकाव समान रूप से प्रजा पोषण की ओर है।*

दक्षिण अफ्रीका में उल्टी नीति दिखाई देती थी। रंग भेद के दर्शन होते थे। मैं मानता था कि यह क्षणिक और स्थानिक है। अतः राजनिष्ठा में मैं अंग्रेजों से भी आगे बढ़ जाता था। मैंने लगन के साथ श्रम करके अंग्रेजों के राष्ट्रगीत ''गॉड सेव द किंग'' *की लय सीख ली। वह सभाओं में गाया जाता तो मैं उसमें अपना स्वर मिला देता और जो जो अवसर आडम्बर के बिना राजभक्ति के प्रदर्शन के आते उसमें मैं शामिल होता था।*

''इस राजनिष्ठा को मैंने जिन्दगी भर नहीं भुलाया। इससे निजी लाभ उठाने का मुझे ख्याल नहीं आया। राजभक्ति को ऋण समझ कर मैंने सदा उसे अदा किया।''

(पृष्ठ 215–216)

गांधी जी ने अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति के प्रमाण बोअर युद्ध और जुलू विद्रोह में दिए।

बोअर युद्ध

डच लोगों (हॉलेन्ड से आए) को बोअर कहा जाता था। उनकी दक्षिण अफ्रीका में ''ट्रान्सवाल'' और ''ऑरेंज फ्री स्टेट'' बस्तियां थीं। जब इन बस्तियों में सोने और हीरे की खानें मिलीं तो अंग्रेजों ने बोअरों पर आक्रमण कर दिया। बोअर युद्ध 1899 से 1902 तक चला।

गांधी जी न अपनी आत्मकथा में लिखा – ***''यह युद्ध जब शुरू हुआ तो मेरा झुकाव बोअरों की ओर था। लेकिन ''मेरी राजभक्ति मुझे उस युद्ध में भाग लेने बरबस घसीट ले गई। मैंने सोचा..... ब्रिटिश प्रजा के रूप में ब्रिटिश राज्य के रक्षण में हिस्सा लेना भी मेरा धर्म होता है। उस समय मेरा मानना था कि हिन्दुस्तान की सम्पूर्ण उन्नति ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रह कर ही हो सकती है।''***

बोअर युद्ध में अंग्रेजों की सहायता करने को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए गांधी जी ने अपनी पुस्तक **''दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह''** में तर्क दिया – ***''अगर हम चाहते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य में बने रहकर ही हम अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर उन्नति करें तो इस वक्त तन–मन–धन से अंग्रेजों की मदद करके वैसा प्राप्त करने का यह सुनहरा मौका है। बोअरों का पक्ष न्याय का पक्ष था, यह बात अधिकांश में स्वीकार की जा सकती है; पर किसी राजतंत्र के अन्दर रहकर प्रजावर्ग का प्रत्येक जन हर मामले में निज की राय पर अमल नहीं कर सकता।....प्रजावर्ग जब तक शासन विशेष को स्वीकार करती है, तब तक उसके कार्यों के अनुकूल होना और उसमें सहायता करना उसका स्पष्ट धर्म है।''***

अतएव गांधी जी ने अंग्रेजों की सहायता हेतु फ़ौज में भर्ती होने की कोशिश की, किन्तु नहीं हो पाए। अंग्रेज हिन्दुस्तानियों को कुली नाम से संबोधित करते थे। उनको यह स्वीकार नहीं था कि किसी ''कुली'' को अपनी फौज में भर्ती किया जाए। लेकिन गांधी जी ने हिम्मत नहीं हारी। अपनी अंग्रेजों के प्रति वफादारी दिखाने के लिए उन्होंने हर स्तर पर कोशिश की। ***''गांधी जी ने अपने साथियों को घायल और रोगियों की सेवा सुश्रुसा की शिक्षा प्राप्त करने की सलाह दी और सरकार को अपनी सेवाएं अर्पित करते हुए लिखा कि अस्पतालों में पाखाना साफ करने या झाड़ू लगाने के काम भी हमें मन्जूर हैं।''***

(हंसराज रहबर – गांधी बेनकाब, पृष्ठ 80)

गांधी जी को बोअर युद्ध में अंग्रेजों की सेवा करने का अन्ततः अवसर प्राप्त हुआ। जब बोअरों ने अंग्रेजों को एक के बाद एक पराजय दी और घायलों की संख्या बढ़ गई तो अंग्रेजों ने विवश होकर प्रवासी भारतीयों को ''एम्बुलेन्स कोर'' के रूप में स्वीकार किया।

गांधी जी ने इसका उल्लेख अपनी आत्मकथा में बड़े गर्व से किया है– ***"हमारे छोटे से काम की उस वक़्त बड़ी तारीफ हुई; इससे हिन्दुस्तान की प्रतिष्ठा बढ़ी। आखिर हिन्दुस्तानी लोग साम्राज्य के वारिस हैं।" – जैसे गीत गाए गए। जनरल बुलर ने हमारी टुकड़ी की तारीफ़ की। मुखियों को युद्ध में तमगे मिले।"***

(पृष्ठ 208)

यह जानते हुए भी कि बोअर युद्ध में बोअरों का पक्ष न्यायपूर्ण है, और अंग्रेजों का अन्यायपूर्ण, फिर भी गांधी जी ने राजनिष्ठा की विशुद्ध प्रेरणा से प्रेरित होकर अंग्रेजों का आग्रह करके साथ दिया और अंग्रेज जनरल की प्रशंसा और तमगों पर गर्व और प्रसन्नता व्यक्त की। अंग्रेजों की भक्ति के इस चरण में सन् 1902 में गांधी जी की आयु 33 वर्ष की थी।

<u>ज़ुलू विद्रोह</u>

गांधी जी को अपनी राजनिष्ठा और अंग्रेजों की सेवा करने का अवसर ज़ुलू विद्रोह में प्राप्त हुआ। ज़ुलू आदिवासिओं ने 1906 में विद्रोह कर दिया। कारण बहुत छोटा था। दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने जो नया कर लगाया था, उसे देने से जुलू लोगों ने इन्कार कर दिया था। उनकी कुरकी करने जो सारजंट भेजा गया था, उसका क़त्ल कर दिया। इस पर अंग्रेजों ने ज़ुलू लोगों को सबक सिखाने के लिए सैनिक चढ़ाई कर दी। बोअर युद्ध में अंग्रेज गांधी जी की राजभक्ति से परिचित हो चुके थे। अतएव फिर उन्हें बुला भेजा। उन्हें सारजंट मेजर का पद, वर्दी और चौबीस भारतीयों की टुकड़ी युद्ध में घायलों की सेवा के लिए दी।

गांधी जी अवगत थे कि निहत्थे ज़ुलू लोगों पर सैनिक आक्रमण न्यायसंगत नहीं है। फिर भी उनकी अंग्रेज़ भक्ति इतनी तीव्र थी कि उनके आगे न्याय–अन्याय का विचार कोई महत्व नहीं रखता था। स्वयं गांधी जी के शब्दों में – ***"अंग्रेजों की सल्तनत को उस समय मैं जगत का कल्याण करने वाला साम्राज्य मानता था। मेरी वफ़ादारी हृदय से थी। उस सल्तनत की मैं बर्बादी नहीं चाहता था। अतः जो कदम मैं उठाने जा रहा था, उससे नीति–अनीति का विचार रोक नहीं सकता था।"***

(आत्मकथा पृष्ठ 295)

ज़ुलू विद्रोह के कुचले जाने के बाद गांधी जी को ''क़ैसरे–हिन्द'' की उपाधि और एक तमगा मिला, जिसे उन्होंने बड़े सम्मान के साथ स्वीकार किया। उस समय गांधी जी की आयु 36 वर्ष की थी।

हिन्द स्वराज

'हिन्द–स्वराज' नामक पुस्तिका गांधी जी ने सन् 1909 में लिखी थी। इसमें भी उनकी अंग्रेज भक्ति लबालब भरी दिखाई पड़ती है। उन्होंने लिखा – ***''अंग्रेज मात्र को अगर हम अपना दुस्मन समझेंगे तो स्वराज हमसे दूर चला जायेगा; अगर उनके साथ भी न्याय का बर्ताव किया जाए तो स्वराज–प्राप्ति में उनकी भी मदद मिलेगी।''*** हिन्द स्वराज में गांधी जी ने यह भी लिखा कि ***''हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम अंग्रेजों को बाहर निकाल फेंके, बल्कि हिन्दुस्तानियों का कर्तव्य है कि अंग्रेजों का आध्यात्मीकरण करें।''*** *(पृष्ठ 10)*

उन्होंने हिन्द स्वराज में यह स्थापना की है कि भारत को अंग्रेज नहीं कुचल रहे हैं, बल्कि भारत को कुचलने वाली आधुनिक सभ्यता है। *(पृष्ठ 47)*

इस प्रकार गांधी जी की अंग्रेज़–भक्ति अंग्रेजों में कोई दोष देखने को तैयार नहीं थी। वह नहीं चाहते थे कि भारत से अंग्रेजी साम्राज्य उखाड़ फेंका जाए। गांधी जी ने जो सिद्धान्त ''हिन्द स्वराज'' में सन् 1909 में प्रतिपादित किए, वे उनसे ही अपने जीवन भर निर्देर्शित होते रहे। ''हिन्द स्वराज'' लिखते समय गांधी जी की आयु 40 वर्ष की थी।

दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह

दिसम्बर, 1913 में दक्षिण अफ्रीका में भारतीय प्रवासियों की शिकायतों की जांच करने के लिए जनरल स्मट्स ने तीन अंग्रेजों की जांच कमीशन नियुक्त की। गांधी जी ने मांग की कि कमीशन में एक भारतीय भी लिया जाए। सरकार ने इस मांग को अस्वीकृत कर दिया। गांधी जी ने इसके विरूद्ध पहली जनवरी, 1914 को सत्याग्रह करने के लिए डर्बन से कूच करने का एलान किया। लेकिन इस बीच वहां रेल विभाग में काम करने वाले गोरे कर्मचारियों ने अपनी मांगों को लेकर हड़ताल कर दी। उन्होंने तोड़फोड़ भी की। बस गांधी जी ने अपना सत्याग्रह स्थगित कर दिया। उन्होंने कहा – ***''प्रतिद्वंदी को नष्ट करना, कष्ट पहुंचाना, नीचा दिखाना अथवा उसके संकट तथा कमजोरी का लाभ उठाना सत्याग्रही का धर्म नहीं है।''*** *(हंसराज रहबर – गांधी बेनकाब)*

गांधी जी यद्यपि अंग्रजों के विरुद्ध सत्याग्रह अभियान चला रहे थे, फिर भी उनकी राजनिष्ठा और अंग्रेज–भक्ति में कोई कमी नहीं आई थी। वह किसी भी कीमत पर, और किसी भी लक्ष्य के लिए, चाहे वह कितना ही न्यायोचित क्यों न हो, अंग्रेजों को क्षति पहुंचाना नहीं चाहते थे। इस समय उनकी आयु 45 वर्ष की थी।

द्वितीय महायुद्ध

दक्षिण अफ्रीका से गांधी जी जनवरी 1915 में बम्बई पहुंचे। उस समय तक प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हो चुका था। भारत आकर ***''जहां उन्होंने बम्बई के गवर्नर से भेंट की, वहीं अपने मित्र वायसराय चेम्सफोर्ड को पत्र लिखकर अपनी सेवाएं अर्पित कीं और मेसोपोटामियां के युद्ध–क्षेत्र में घायलों को उठाने वाली 'कोर' संगठित करने का सुझाव प्रस्तुत किया। वाइसराय ने उत्तर दिया कि अभी आप अपना स्वास्थ्य सुधारें और लिखा कि इस संकट के काल में हिन्दुस्तान में आपकी उपस्थिति उससे बड़ी सेवा होगी, जो आप विदेश में जाकर कर पायेंगे।''*** (*हंसराज रहबर – गांधी बेनकाब, पृष्ठ 148)*

युद्ध में लोकमान्य तिलक और एनी बेसेन्ट ''होमरूल'' के आन्दोलन कर रहे थे। गांधी जी ने तिलक के मुकाबले में अपने को अंग्रेजों का हित–चिंतक और भक्त सिद्ध करने के लिए वाइसराय को पत्र लिखा – ***''मेरे वश की बात होती तो मैं इस मौके पर होमरूल वगैरह का नाम तक न लेता, बल्कि साम्राज्य के इस आड़े वक्त में सारे शक्तिशाली हिन्दुस्तानियों को उनकी रक्षा में चुपचाप बलिदान हो जाने को प्रेरित करता..।''***

अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति अपनी वफादारी दर्शाने में गांधी उस युग के अंग्रेजों के पिट्ठू ''राय बहादुरों'' और ''खान बहादुरों'' से किसी प्रकार पीछे नहीं थे।

अंग्रेजों के लिए रंगरूट भरती करवाने के काम में गांधीजी जी–जान से लग गए। उन्होंने दलील दी ***–''ब्रिटिश साम्राज्य हमें शत्रुओं के आक्रमण से बचाने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे नाजुक समय में हमारा भी कर्तव्य होना चाहिए कि साम्राज्य की रक्षा के लिए अपने रक्त का अंतिम बिन्दु भी बहाने में संकोच न करें।''***

युद्ध के दौरान भारतीय नेताओं का सहयोग प्राप्त करने के लिए बम्बई के गवर्नर ने युद्ध परिषद की बैठक आयोजित की। इसमें तिलक और गांधी दोनो ही आमंत्रित थे। अधिवेशन में युद्ध में सहायता करने का प्रस्ताव आया। तिलक ने इसको संशोधित करते

हुए कहा कि अंग्रेजों को युद्ध में सहायता तभी दी जा सकती है, जब अंग्रेज हिन्दुस्तानियों को स्वशासन का अधिकार दें। गवर्नर ने इस संशोधन की आज्ञा नहीं दी तो तिलक और उनके साथी अधिवेशन से वाक–आउट कर गए। किन्तु गांधी जी ने वाक–आउट नहीं किया। अंग्रेजी साम्राज्य के एक वफादार सेवक की भांति उनकी अंग्रेजभक्ति किसी भी हालत में अपने स्वामी को मुसीबत में सहायता देने से पहले शर्त लगाना उचित नहीं समझती थी। तिलक की आलोचना करते हुए उन्होंने एक भाषण में कहा – ***''यदि हम साम्राज्य के समान अधिकारों की मांग करते हैं तो हमें उसे वर्तमान संकट से उबारना चाहिए। मैं जो आपसे कह रहा हूं उस पर मनन करें और यदि उचित लगे तो बलिदान के लिए आगे आएं। .....''***

प्रथम विश्वयुद्ध सन् 1918 में समाप्त हुआ था। उस समय गांधी जी की आयु 49 वर्ष थी।

<u>सन् 1919 से 1922 तक</u>

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद गांधी जी समझते थे कि युद्धकाल में रंगरूटों की भर्ती के लिए किए गए कार्य के लिए अंग्रेज उनको और हिन्दुस्तान को पारितोषक देंगे। लेकिन हुआ इसका उल्टा। अग्रेजों ने रौलॅट एक्ट लागू किया जिसके अन्तर्गत किसी को भी बिना कारण बताए गिरफ्तार किया जा सकता था, जिसका मुकद्दमा पर्दे में होगा, और जिसमें वकील नहीं जा सकेंगे। गांधी जी ने इसके विरुद्ध देशव्यापी हड़ताल और विरोध आयोजित किया। हड़तालियों के अनुसार रॉलैट एक्ट एक राक्षसी कानून था जिसमें ''वकील नहीं, दलील नहीं, अपील नहीं।'' रौलेट एक्ट के विरुद्ध गांधी जी ने 30 मार्च, 1919 सत्याग्रह के लिए निश्चित की। बाद में यह तिथि 6 अप्रैल, 1919 को बढ़ा दी गई। इस सत्याग्रह के दौरान ही अमृतसर मे जलियावाला कांड हुआ। दिल्ली में पुलिस की गोली से आठ व्यक्तिओं की मौत हुई। बंबई, कलकत्ता, अहमदाबाद और लाहौर में अंग्रेज़ों के विरुद्ध भयंकर दंगे भड़क उठे। सत्याग्रह अहिंसा की सीमाओं को लांघता हुआ, हिंसा के पाले में बढ़ रहा था। इसने गांधी जी को दुखी किया, और 18 अप्रैल 1919 को उन्होंने सत्याग्रह निलंबित कर दिया।

इसके बाद गांधी जी ने दूसरा आंदोलन तुर्की में खलीफा के पद और अधिकारों को पूर्ववत प्रतिष्ठित करने के लिए किया। अग्रेजों द्वारा दक्षिण अफ्रीका में उनको दिए हुए ''क़ैसरे हिन्द'' स्वर्ण पदक, जुलू युद्ध पदक तथा बोअर युद्ध पदक को वापस करते हुए

गांधी जी ने वाइसराय चेम्सफोर्ड को पत्र लिखा ***–''पिछले कुछ महीनों में जो घटित हुआ है उससे मुझे विश्वास हो गया है कि साम्राज्यवादी सरकार ने अनैतिक और अन्यायपूर्ण ढंग से खिलाफत के मामले में कार्य किए हैं और.... एक के बाद दूसरा गलत काम करती जा रही है। मैं ऐसी सरकार के लिए अब आदर या स्नेह बनाए नहीं रख सकता हूं।''*** और गांधी जी ने खिलाफत के पक्ष में पहली अगस्त, 1920 से असहयोग आंदोलन घोषित किया।

नागपुर में दिसम्बर, 1920 में सम्पन्न हुए कांग्रेस अधिवेशन ने गांधी जी को असहयोग आंदोलन चलाने के लिए अधिकृत किया। गांधीजी के अनुरोध पर कांग्रेस ने नया संविधान अपनाया, जिसके अनुसार कांग्रेस का ध्येय संवैधानिक साधनों के स्थान पर ''शांतिमय और औचित्यपूर्ण ढंग से स्वराज'' की प्राप्ति निश्चित किया गया।

दिसम्बर, 1921 में अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में मौलाना हसरत मोहानी ने प्रस्तावित किया कि कांग्रेस का ध्येय ''स्वराज'' के स्थान पर ''पूर्ण स्वराज'' होना चाहिए। किन्तु गांधीजी इससे सहमत नहीं थे। वह अंग्रेजों के अधीन ''स्वराज'' (डोमिनियन स्टेटस) प्राप्त करना चाहते थे, अतएव कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। अंग्रेज–भक्ति गांधीजी और ''पूर्ण स्वराज'' के बीच आड़े आ गई थी।

अहमदाबाद अधिवेशन (दिसम्बर, 1921) में ही कांग्रेस ने भावी रणनीति और आंदोलन चलाने का सारा दायित्व गांधीजी पर छोड़ दिया। गांधी जी ने वाइसराय को पत्र लिखा कि अगर सब राजनैतिक बंदियों को नहीं छोड़ा गया तो वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ने को बाध्य हो जायेंगे। *''सरकार पर जब इसका कोई असर नहीं पड़ा तो गांधी जी ने मजबूर होकर सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ने की घोषणा कर दी।''*

(बिपिन चन्द्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ 161)

यह आन्दोलन बारदोली तालुका (सूरत) में शुरू होने वाला था, लेकिन इसी बीच चौरी–चौरा कांड (5 फरवरी, 1922) हो गया; गोरखपुर जिले में आन्दोलनकारियों ने चौरा–चौरी थाना जला दिया, जिसमें 22 पुलिसकर्मी मर गए। इसकी सूचना मिलते ही गांधी जी ने आंदोलन वापस लेने के घोषणा कर दी।

अनेक सरकारी इतिहासकार लिखते हैं कि रॉलैट एक्ट के विरुद्ध हड़ताल आयोजन, खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन के द्वारा गांधी जी का विद्रोही और

अंग्रेज–विरोधी रूप प्रकट हुआ। उनका यह रूप बोअर और जुलू युद्धों में अंग्रेजों की सेवा करने वाले तथा प्रथम युद्ध में अंग्रेजी फौज के लिए रंगरूट भरती करवाने वाले रूप से एकदम विपरीत था। लेकिन अगर ध्यान से देखा जाए तो यह रूप का परिवर्तन केवल सतही था। हृदय से गांधी जी अभी भी अंग्रेज–भक्त थे। इस दौरान ही गांधीजी ने मौलाना हसरत मोहानी के ''पूर्ण स्वराज'' के प्रस्ताव को अस्वीकार करके अंग्रेजी शासन के अधीन स्वराज (डोमिनियन स्टेटस) की मांग को कांग्रेस का ध्येय बनाने के लिए प्रस्ताव अपने प्रभाव से पारित करवाया था। अपनी आयु के इस चरण में भी वह अंग्रेज–भक्त थे, तब ही तो अंग्रेजों से एकदम नाता तोड़ने के लिए सहमत नहीं हुए। खिलाफत आन्दोलन और असहयोग आंदोलन का उद्देश्य भी अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करना नहीं था। रौलेट एक्ट के विरूद्ध आंदोलन भी अंग्रेजों द्वारा बनाए गए मात्र एक अधिनियम को निरस्त करने भर के लिए था, अंग्रेजों के साम्राज्य को संपूर्ण चुनौती नहीं था। गांधीजी की अंग्रेज भक्ति तब खुलकर सामने आई, जब चौरी–चौरा कांड में कुछ पुलिसकर्मियों की मृत्यु हो गई। उन्होंने आंदोलन वापस ले लिया। 53 वर्ष की आयु पर भी गांधी जी अंग्रेजों के साम्राज्यवादी हित को किसी प्रकार चोट नहीं करना चाहते थे।

''स्वराज'' बनाम ''पूर्ण स्वराज''

जिस समय गांधीजी स्वराज की लड़ाई लड़ रहे थे, सामान्य लोग स्वराज का अर्थ अंग्रेजी राज्य से आजादी समझते थे। इसीलिए आंदोलनों में वह अंग्रेजी शासन के प्रतीक रेलवे लाइन, टेलीफोन तार, पुलिस थाने और पुलिस अधिकारियों तथा अंग्रेज शासकों पर आक्रमण करते थे। यह गांधीजी को बिल्कुल पसंद नहीं था, क्योंकि वह अंग्रेजी अंग्रेजी साम्राज्य के अधीन ***''स्वशासन''*** मात्र चाहते थे, जिसे वे ***''स्वराज''*** कहते थे।

कांग्रेस में भी एक बहुत बड़ा दल था जो वास्तव में अंग्रेजों से आजादी चाहता था। गांधीजी की तरह अंग्रेजों के अधीन केवल स्वशासन से संतुष्ट नहीं था। इसलिए 1921 के बाद हर कांग्रेसी अधिवेशन में ''पूर्ण स्वराज'' की मांग उठती थी, किन्तु गांधीजी के प्रभाव से हमेशा खारिज कर दी जाती थी। संयोग से 1927 के मद्रास में सम्पन्न हुए कांग्रेस अधिवेशन में गांधीजी नहीं थे। उस समय नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस के साथ थे, और उनके प्रभाव में थे। जवाहर लाल नेहरू ने ''पूर्ण स्वराज'' का प्रस्ताव रखा, जो पारित हो गया। बाद में जब महात्मा गांधी को इसके बारे में पता लगा तो उन्होंने इसके लिए जवाहर लाल नेहरू को पत्र लिखकर अपनी असंतुष्टि व्यक्त की।

अगले साल सन् 1928 में कलकत्ते में सम्पन्न हुए कांग्रेस अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस आदि ने ''पूर्ण स्वराज्य'' को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित करने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो महात्मा गांधी तथा मोतीलाल नेहरू ने इसका विरोध किया। ''पूर्ण स्वराज्य'' के समर्थकों के आग्रह पर गांधीजी आदि ने बीच का रास्ता निकाला। यह तय हुआ कि कांग्रेस का लक्ष्य ''डोमिनियन स्टेटस'' की प्राप्ति ही रहेगा, लेकिन अगर एक वर्ष के भीतर सरकार ने ''डोमिनियन स्टेटस'' नहीं दिया तो कांग्रेस ''पूर्ण स्वराज'' की मांग करेगी। सन् 1927 के ''पूर्ण–स्वराज्य'' के कांग्रेस के लक्ष्य को सन् 1928 में केवल ''स्वराज'' में परिवर्तित करके ही गांधीजी के अंग्रेज–भक्त हृदय को शांति प्राप्त हुई। 59 वर्ष की आयु में भी गांधी जी अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए संघर्ष नहीं चाहते थे।

एक वर्ष बीत गया। अंग्रेजों ने भारत के लिए ''डोमिनियन स्टेटस'' की घोषणा नहीं की। अतएव मजबूर होकर महात्मा गांधी ने अपने आलोचकों को खामोश करने के लिए स्वयम् दिसम्बर 1929 के लाहौर अधिवेशन में ''पूर्ण–स्वराज'' का प्रस्ताव किया, जो बहुमत से स्वीकृत हुआ। सुभाषचन्द्र बोस ने कहा कि जब कांग्रेस का ध्येय ''पूर्ण–स्वराज'' है तो कांग्रेस को अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष की तैयारी करनी चाहिए। स्वतंत्र भारत की ''समानान्तर सरकार'' बनाई जानी चाहिए। किन्तु गांधी जी इस सीमा तक अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं जाना चाहते थे। उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अन्तर्गत ''नमक कानून'' तोड़ने का निश्चय किया। नमक पैसे के मोल बिकता था। इसमें टैक्स का अनुपात एक कौड़ी के बराबर भी नहीं था, अतएव नमक कानून तोड़ने में अंग्रेजों की आर्थिक हानि सांकेतिक मात्र थी। ऐसा प्रतीत होता है कि गांधी जी ने अपनी अंग्रेज–भक्ति के कारण ऐसा कानून तोड़ने का निश्चय किया, जिससे अंग्रेजों का आर्थिक हित प्रभावित न हो। अंग्रेज़ों को भारत के बाहर खदेड़ने और देश को पूर्ण रूप से स्वतंत्र करने के दबाव को गांधी जी ने नमक सत्याग्रह करके निरस्त कर दिया। अंग्रेज़ भक्ति के इस मोड़ पर उनकी आयु 61 वर्ष थी।

भगत सिंह बनाम गांधीजी की अंग्रेज़ भक्ति

अंग्रेजों के प्रति वफादारी का निकृष्टतम प्रमाण भगत सिंह के संदर्भ में मिलता है। पूरा देश आशा करता था कि गांधी–इरविन वार्ता में गांधीजी भगतसिंह की फांसी को आजीवन कारावास में परिवर्तित करवाने का प्रयत्न करेंगें, किन्तु उन्होंने ऐसा कुछ नहीं

किया। आज अभिलेखागार में जो दस्तावेज उपलब्ध हैं (फाइल नं. 5–45/1931 के डब्ल्यू 2 गृह विभाग, राजनैतिक शाखा) वह चीख–चीख कर कह रहे हैं कि गांधी जी ने भगत सिंह को बचाने का कोई प्रयत्न नहीं किया था। इसके उल्टे उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया कि भगत सिंह की फांसी बिना किसी उपद्रव के हो जाए। उन्होंने फांसी के कारण उपद्रव न होने देने का आश्वासन भी भारत सरकार के मुख्य सचिव इमर्सन को दिया। जब इमर्सन को पता लगा कि सुभाषचन्द्र बोस, भगत सिंह की फांसी के विरुद्ध दिल्ली में विरोध सभा आयोजित कर रहें हैं तो उसको उपद्रव की आशंका हुई। उसने तुरंत गांधी जी को पत्र लिखा और परामर्श मांगा। गांधी जी ने निम्नलिखित उत्तर (अभिलेखागार फाइल नं. 4–21/1931) इमर्सन को भेजा :–

2, दरिया गंज,
दिल्ली.
20 मार्च, 1931

प्रिय इमर्सन,

अभी–अभी आपका पत्र मिला। धन्यवाद! आपने जिस सभा का जिक्र किया है, उसका मुझे पता है। मैंने हर संभव एतिहात ले ली है। उम्मीद करता हूं कि कोई गड़बड़ी नहीं होगी। मैं सुझाव देता हूं कि पुलिस–फोर्स का दिखावा न हो। सभा में किसी प्रकार का हस्ताक्षेप न किया जाए। रही उत्तेजना, सो तो होगी। इस उत्तेजना को सभाओं के जरिये से निकल जाने देना उचित होगा।

भवदीय
(एम.के.गांधी)

एस.डब्ल्यू.एमर्सन,
चीफ सेक्रेटरी टू गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया,
नई दिल्ली.

इस पत्र को लिखते समय गांधी जी की आयु 62 वर्ष थी। इस पकी आयु पर भी न वह केवल अंग्रेजी साम्राज्य के हित–चिंतक थे, बल्कि अंग्रेजों के हित की रक्षा में सक्रिय रूप से संलग्न थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध

सितम्बर, 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ और जर्मनी ने ब्रिटेन और उसके साथी देशों पर आक्रमण किया तो महात्मा गांधी की अंग्रेज भक्ति ने एक बार फिर उछाल मारा। उन्होंने तत्कालीन वायसराय लार्ड लिनलिथगो से भेंट की और कहा कि ***''उनकी व्यक्तिगत सहानभूति इंग्लैण्ड और फ्रांस के साथ है।''*** उस समय बहुत से कांग्रेसी, विशेष रूप से सुभाष चन्द्र बोस इस मत के थे कि इस मुसीबत का फायदा उठाते हुए भारत की आजादी की लड़ाई छेड़ देनी चाहिए। उन्होंने कहा – ***''शत्रु की आपत्ति भारत के लिए अवसर है।'*** उनका यह भी मत था कि अंग्रेज़ इसके बदले में भारत को आजाद करें। किन्तु गांधी जी की राजनिष्ठा को यह गवारा नहीं था।

सितम्बर 23, 1939 के ''द हरिजन'' में गांधी जी ने लिखा – ***''ब्रिटेन को जो भी (युद्ध) सहायता दी जाए, वह बिना शर्त के होनी चाहिए।''*** उन्होंने लोगों को शांत रहने की अपील निकालते हुए कहा – ***''हम ब्रिटेन की बर्बादी के द्वारा अपनी आजादी नहीं चाहते।''*** यह शब्द दिल की गहराइयों से निकले एक सच्चे अंग्रेज भक्त के ही हो सकते थे, जिसे अपने देश की आजादी से अधिक अंग्रेज–साम्राज्य के कल्याण की चिंता थी। इस समय गांधी जी की आयु 70 वर्ष की थी।

सन् 1942 का आंदोलन

युद्ध के दौरान महात्मा गांधी और उनके प्रिय जवाहरलाल नेहरू भारत की आजादी के लिए अंग्रेजों के विरूद्ध किसी किस्म का आंदोलन नहीं छेड़ना चाहते थे। लेकिन सुभाष चंद्र बोस की लोकप्रियता की प्रतिक्रिया में गांधी जी को 1942 का आन्दोलन छेड़ना पड़ा। अंग्रेजों की आंखों में धूल झोंक कर जिस प्रकार सुभाष चंद्र बोस उनकी निगरानी से फ़रार हो गए, उसने पूरे हिन्दुस्तानियों को झकझोर दिया था। उनकी घर–घर बहादुरी और चतुराई की कहानियाँ सुनाई पड़ने लगीं। और जब फरवरी 1942 में जर्मनी के रेडियो पर उनकी आवाज़ सुनाई पड़ी, तो पूरा देश खुशी से झूम उठा। उस समय उनकी लोकप्रियता के सामने गांधीजी तथा अन्य कांग्रेसी नेता फीके पड़ने लगे। अतएव जनता को पुनः अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए गांधी जी ने 1942 के आन्दोलन की योजना बनाई।

सन् 1942 में जब गांधी जी 73 वर्ष के थे, तब पहली बार (बिल्कुल पहली बार) उन्होंने अनुभव किया कि *''भारत से ब्रिटिश शासन का तुरन्त अन्त होना चाहिए।''* जो बात खुदीराम बोस को सोलह साल की आयु में समझ में आ गई थी, जो बात भगत सिंह को इक्कीस वर्ष की आयु में समझ में आ गई थी, जो बात चन्द्रशेखर आजाद, सूर्यसेन, अश्फाकुल्ला, रामप्रसाद बिस्मिला वगैरा को चौबीस–पच्चीस वर्ष की आयु में समझ में आ

गई थी, वह बात गांधी जी की समझ में 73 वर्ष की आयु में आई। यह कैसी विडंबना है कि पूरा देश जिसके नेतृत्व में आखे बंद कर पिछले तीस वर्ष से इस आशा से चल रहा था कि वह अंग्रेजों से देश को आजाद कराएंगे, उस नेता को तिहत्तर वर्ष की आयु तक यह समझ में नहीं आया था कि देश से अंग्रेजी शासन का अन्त करना चाहिए। वह तिहत्तर वर्ष की आयु में पहली बार 8 अगस्त, 1942 को देश को ''करो या मरो'' का नारा देता है। ऐसी जोशीली बातें करने और आंदोलन छेड़ने के निर्णय के बाद गांधी जी ने तुरन्त ''भारत छोड़ो आन्दोलन'' नहीं छेड़ा। तिहत्तर वर्षों की अंग्रेज–भक्ति और राजनिष्ठा अवश्य ही आड़े आ रही होगी। उन्होंने घोषणा की कि आंदोलन छेड़ने के पहले वे वाइसराय को पत्र लिखेंगे और उसके बाद ही आन्दोलन छेड़ने की तिथि निर्धारित करेंगे। *(कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गांधी; वोल्यूम 88, पृष्ठ)* इस प्रकार अगस्त आन्दोलन कभी छेड़ा ही नहीं गया। अंग्रेजों ने गांधी जी को इसका अवसर ही नहीं दिया। दूसरे ही दिन 9 अगस्त, 1942 को गांधी जी आदि कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर दिया।

इस तरह से गांधीजी और कांग्रेस ''भारत छोड़ो आन्दोलन'' प्रारंभ नहीं कर सकी, किन्तु भारत की जनता में अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने के लिए अपने आप विद्रोह फूट पड़ा। यह आंदोलन गांधी जी की शिक्षाओं के अनुरूप अहिंसक नहीं था। आंदोलनकारियों ने 500 डाकघरों, 250 रेलवे–स्टेशनों और 150 पुलिस थानों को तोड़–फोड़ करके नष्ट कर दिया। 31 पुलिसकर्मी मारे गए और 11 फौजी। लगभग 1500 आंदोलनकारियों की मृत्यु हुई। गांधी जी इस समय आगा खां महल में बंदी थे। वहां उनको आंदोलन की तोड़–फोड़ और हिंसा की घटनाओं की सूचना मिली तो उनको बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने 31 दिसम्बर, 1942 को वाइसराय को लिखा कि आन्दोलन में हुई हिंसक घटनाओं के लिए कांग्रेस की जिम्मेदारी नहीं है और इस तरह उन्होंने अगस्त आंदोलन से अपने आपको अलग करने का प्रयत्न किया। 74 वर्ष की आयु में भी वह पूरी तरह अंग्रेजों के विरोधी–शिविर में नहीं खड़े होना चाहते थे। उन्होंने पत्र में वाइसराय से सरकार के साथ वार्ता की भी पेशकश की। जब वाइसराय ने उनके पत्र का उत्तर नहीं दिया तो उन्होंने अंग्रेजों के प्रति अपनी सदाशयता जताने के लिए हिंसा के विरुद्ध पश्चाताप के रूप में 21 दिन का उपवास किया।

यद्यपि 73 वर्ष की आयु में उन्होंने पहली बार कहा था कि अंग्रेज भारत की धरती से निकल जाएं, किन्तु उनकी कार्यशैली में कोई परिवर्तन नहीं आया था। जिस तरह सन् 1908 के दक्षिण अफ्रीका के आंदोलन के शिथिल हो जाने के बाद गांधी जी ने जेल

से जनरल स्मट्स से वार्ता की थी; और सन् 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के निष्प्रभावी हो जाने के पश्चात् वाइसराय लॉर्ड इरविन को जेल से वार्ता के लिए पत्र लिखा था, उसी तरह सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात् भी वाइसराय लार्ड लिनलिथगो को वार्ता के लिए उन्होंने पत्र लिखा। स्वाधीनता सघर्ष के लिए जिस कटिबद्धता और तेवर की जरूरत होती है, वह गांधी जी में 73 वर्ष के बाद भी "करो या मरो" का नारा देकर भी प्रकट नहीं हुई। बाद में ''करो या मरो'' के नारे का स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने कहा कि ''करो'' का अर्थ अहिंसात्मक संघर्ष करने से था, तथा ''मरो" का अर्थ अहिंसात्मक संघर्ष में स्वयम् अपनी जान देने से था। इस नारे में ''हिंसा'' की गुंजाइश कहीं नहीं थी। स्पष्ट है कि अपने पूरे जीवन में गांधी जी ने कभी भी अंग्रेजी साम्राज्य समाप्त करने के लिए ''इस पार या उस पार'' का निर्णयात्मक संघर्ष, जिसमें लोग "वासंती चोला'' पहनकर जौहर करने के लिए निकल पड़ें, नहीं किया। सदा ही उनके अन्तर्मन में राजनिष्ठा से परिपूरित अंग्रेजभक्त जीवित रहा – 73 वर्ष की आयु पर भी।

15 अगस्त, 1947 : अंग्रेजी हित की विजय

31 दिसम्बर, 1929 की रात कांग्रेस अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू ने रावी के तट पर झंडा फहराकर, गांधी जी के आशीर्वाद से घोषित किया था कि कांग्रेस का लक्ष्य ''पूर्ण स्वराज" है। किन्तु 15 अगस्त, 1947 को देश का विभाजन हुआ तो जो भूखण्ड पाकिस्तान नहीं बना, वहाँ भी ''पूर्ण स्वराज'' नहीं मिला। 15 अगस्त, 1947 को अंग्रेजी आधिपत्य के अंतर्गत भारत को ''डोमीनियन स्टेटस'' के रूप में केवल ''स्वराज'' प्राप्त हुआ और जिसमें भारत के प्रधानमंत्री, गवर्नर जनरल आदि सब ब्रिटिश–सिंहासन के अधीन थें। इस प्रकार दिसम्बर, 1929 को "पूर्ण स्वराज'' प्राप्त करने की जो शपथ रावी के तट पर लाहौर में ली गई थी, फलीभूत नहीं हुई। यह एक प्रकार से कांग्रेस, गांधी जी और नेहरू की पराजय थी और अंग्रेजी हित और कूटनीति की विजय।

भारत में अंग्रेजों की हुकूमत अपनी सेना के सहारे टिकी थी। अंग्रेजों के लिए यह व्यवहारिक और संभव नहीं था कि वह अपनी पूरी की पूरी सेना इंग्लैण्ड से लाते। अतएव उन्होंने 90 प्रतिशत भारतीयों को ही अपनी सेना में भरती कर लिया था। ये भारतीय सैनिक ही उनकी सेना की रीढ़ थे। इनके सहारे ही अंग्रेजी साम्राज्य भारत में जड़े जमाए बैठा था। सुभाष चन्द्र बोस की आज़ाद हिन्द फौज में भरती होकर इन सैनिकों ने, जिन्हें जापान ने युद्धबन्दी बना लिया था, जब अंग्रेजी साम्राज्य के विरूद्ध युद्ध किया तो अंग्रेज

हिल गए। और जब आजाद हिन्द फौज से प्रेरित होकर फरवरी, 1946 में अंग्रेज नौसेना के जहाज ''आई.एन.एस.तलवार'' के नौसैनिकों ने विद्रोह की मशाल जलाई और जब उसने वायुसेना में विद्रोह की आग, लगाई तो अंग्रेज कांप उठे। अंग्रेजो ने निश्चय किया कि इसके पहले 1857 की सैनिक क्रान्ति जैसी दूसरी सैनिक क्रान्ति फूट पडे, देश से 'भाग जाना ही उचित होगा। उन्होंने देश से बोरिया–बिस्तर गोल करने का निर्णय लिया । किन्तु उनकी एक चिंता थी । भारत में जो अंग्रजों की अरबों–खरबों की पूंजी लगी थी, उसे कैसे बचाया जाए? अगर वह भारत को ''पूर्ण स्वराज'' दे दें, और भारत की आजाद सरकार दूसरे ही दिन समस्त ब्रिटिश पूंजी और उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर देती है, तो वे अरबों–खरबों से हाथ धो बैठेंगे। अतएव उन्होंने 15 अगस्त, 1947 को भारत को ''पूर्ण–स्वराज'' के स्थान पर आधा स्वराज (डोमिनियन स्टेटस) देने का निर्णय किया। लेकिन कांग्रेस को इसके लिए कैसे मनाएं ? वाइसराय ने यह काम अपनी पत्नी एडविना मांउटबेटन को सौंपा, जिसके प्रेमजाल में जवाहरलाल नेहरू फंसते जा रहे थे। एडिबिना ने नेहरू को पूर्ण–स्वराज के स्थान पर डोमीनियन–स्टेटस स्वीकार करने के लिए मना लिया। इस प्रकार से भारत में निवेशित अरबो–खरबों की अंग्रेजी–पूंजी को बचा लिया। जब नेहरू ''डोमिनियन–स्टेटस'' स्वीकार करने को सहमत हो गए तो गांधी जी भी ''पूर्ण–स्वराज'' के काग्रेस के प्रस्ताव और वचनबद्धता को एकदम भूल गए। सतत्तर वर्ष की आयु पर भी गांधी जी के अंदर कुछ न कुछ अंग्रेज–भक्ति जीवित थी। इसीलिए अंग्रेजो के हितों की रक्षा के लिए ही उन्होंने ''पूर्ण–स्वराज" की कांग्रेसी वचनबद्धता का मामला नहीं उठाया।

अंग्रेज भक्ति की पराकाष्ठा

अंग्रेज भक्ति आजीवन गांधी जी के व्यक्तित्व में घुली–मिली रही। जैसे फूल से सुगन्ध को अलग नहीं किया जा सकता, वैसे ही जब तक गांधी जी जीवित रहे, अंग्रेज–भवित उनसे छूट नहीं सकी। कुछ अध्येताओं का मानना है कि वह अंग्रेज़–भक्ति की बलिवेदी पर ही बलिदान हुए। क्या यह संभव है? तथा यह सच है ? गांधी जी जैसे बहुप्रसिद्ध, बहुश्रुत, बहुप्रशंसित और बहुपूजित व्यक्ति के संबंध में ऐसे आक्षेप को सत्य मानकर स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके परीक्षण की आवश्यकता है।

गांधी जी के जीवन का अंतिम उपवास 13 जनवरी से 18 जनवरी 1948 तक चला था। बारह जनवरी की शाम को उन्होंने अपनी प्रार्थना सभा में घोषणा की कि दिल्ली के मुसलमान अपने आपकी असुरक्षित अनुभव कर रहे हैं, अतएव उनके हृदयों से असुरक्षा की

भावना को हटाने और दिल्ली में रहने वाले सभी धर्मो के अनुयायियों के हृदयों को एक करने के लिए वे अनिश्चितकालीन उपवास करेंगें। इस घोषणा में उपवास के उद्देश्यों में पाकिस्तान को 55 करोड़ न देने का मामला शामिल नहीं था।

इस घोषणा के बाद उनको ज्ञात हुआ कि उसी दिन (12 जनवरी, 1948) सुबह भारत सरकार ने देश के विभाजन के अंतर्गत 55 करोड़ रूपए की पाकिस्तान को देय राशि को पाकिस्तान को न देने का निर्णय लिया है। उनकी समझ में नहीं आया कि इस निर्णय पर किससे परामर्श लिया जाए? कोई भी हिन्दुस्तानी उन्हें परामर्श–योग्य नहीं लगा। अतएव तुरन्त गवर्नर जनरल माउंटबैटेन का परामर्श लेने उनके निवास पहुंचे। माउंटबैटेन ने गांधी जी को बताया कि राजनैतिक दृष्टि से यह बहुत ही गैर–समझदारी का कदम होगा और आजाद भारत का पहला गरिमाहीन कार्य होगा। *(राजमोहन गांधी : पटेल, ए लाइफ,– पृष्ठ 462)*

बस गांधी जी ने पचपन करोड़ का मामला भी अपने उपवास के अन्य मुद्दो के साथ जोड़ लिया।

दूसरे दिन जब सरदार पटेल गांधी जी से मिलने गए तो गांधी जी ने उनसे कहा कि ***''पाकिस्तान को पचपन करोड़ न देना अनैतिक होगा।''*** पटेल ने तुरन्त पूछा – ***"कौन कहता है ?'' ''माउंटबेटन''*** – गांधी जी ने उत्तर दिया। पटेल ने गांधी जी से कहा कि यह निर्णय उनका नहीं है, बल्कि पूरे मंत्रिमंडल का है। इस पर गांधी जी ने बताया कि उनकी नेहरू से बात हो चुकी है और नेहरू का भी मानना है कि यह सही है कि मंत्रिमंडल की बैठक में ऐसा निर्णय लिया गया है, लेकिन यह न्यायोचित नहीं है। ***''नेहरू का मानना है कि यह निर्णय मात्र कानूनी बारीकियों का शब्द–जाल है।''*** सरदार पटेल को नेहरू जी के स्वयम् अपने निर्णय से इस तरह पलट जाने पर बड़ा आश्चर्य और दुःख पहुंचा।

पाकिस्तान ने कश्मीर पर अक्टूबर, 1947 में आक्रमण कर दिया था। जनवरी, 1948 में भी पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की फौजें युद्ध के मैदान मे आमने–सामने थीं। अतएव पूरे मंत्रिमंडल ने गहन विचार–विमर्श के बाद यह निर्णय लिया था कि अगर इस समय पचपन करोड़ रुपए पाकिस्तान को दिए गए तो वह इसका इस्तेमाल भारत के विरूद्ध युद्ध में हथियार, जहाज टैंक आदि खरीदने के लिए करेगा । प्रधानमंत्री के रूप में नेहरू से अपेक्षित था कि वह मंत्रिमंडल के उस सामूहिक निर्णय का समर्थन करते, जिसमें वह स्वयम् भी शामिल थे। किन्तु नेहरू को पाला बदलने में देर नहीं लगी । नेहरू की इस

अवसरवादिता पर पटेल को क्षोभ हुआ और इसीलिए जब मंत्रिमंडल ने 14 जनवरी को नेहरू जी के दबाव के कारण पाकिस्तान को पचपन करोड़ न देने के अपने पूर्व फैसले को निरस्त किया, तो पूरे देश में यह मसला विवाद का विषय बन गया। गांधी जी ने अनेक अवसरों पर बार–बार यह कहा था कि वह देश के विभाजन के विरूद्ध हैं। उन्होंने तो यह भी घोषित किया था कि ***"देश का विभाजन उनके मृत–शरीर पर ही हो सकता है।"*** इन घोषणाओं से हिन्दु आश्वस्त थे कि गांधी जी देश का विभाजन नहीं होने देंगे। कांग्रेस को प्रायः शत–प्रतिशत हिंन्दुओ का समर्थन प्राप्त था। हिन्दुओं ने हिन्दुओं की एकमात्र राजनैतिक संस्था ''हिन्दु महासभा'' को अस्वीकृत कर दिया था। जब कांग्रेस ने देश का विभाजन स्वीकार किया और गांधी जी ने इसका विरोध नहीं किया, तो हिन्दुओं के आक्रोश की बारूद में, पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपये न दिये जाने के निर्णय को निरस्त करवाने में गांधी जी की भूमिका ने, चिंगारी का कार्य किया। किन्तु गांधी जी की यह भूमिका स्वयम् उनकी रचना नहीं थी। इसके पीछे अंग्रेज गवर्नर–जनरल मांउटबैटेन का निर्देशन था।

महात्मा गांधी की आयु उस समय 78 वर्ष की थी और माउंटबेटेन की 46 वर्ष। अपनी आयु से लगभग आधी आयु के व्यक्ति का परामर्श लेने का गांधी जी को विचार कैसे आया? स्पष्ट ही इसके पीछे माउंटबेटेन का गोरी चमड़ी का अंग्रेज होना था। गांधी जी की ''अंग्रेंज–भक्ति'' ने ही उनको अपने से आधी आयु के व्यक्ति के पास नैतिकता–अनैतिकता के गहन तत्वों के ज्ञान के लिए जाने को प्रेरित किया। उस अंग्रेज के श्रीमुख से निकले परामर्श को उन्होंने बिना किसी संशय, प्रश्न या संशोधन के ज्यों का त्यों मान लिया और उसे कार्यान्वित करने के लिए पाकिस्तान को पचपन करोड़ रूपए न देने के भारत सरकार के निर्णय को निरस्त करवाया। इससे रुष्ट होकर एक मूर्ख और पागल व्यक्ति ने उनकी हत्या कर दी। इस तरह गांधी जी को अपनी अंग्रेज–भक्ति के कारण ही अपने प्राण गंवाने पड़े। मंत्रिमंडल में नेहरू, पटेल, अबुल कलाम आजाद, कृपलानी, राजेन्द्र प्रसाद जैसे महारथी थे। गांधी जी को इनमें से किसी की क्षमता और योग्यता पर भरोसा नहीं था। संशय के क्षण में उन्हें पूरे भारत में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ा, जिसका वह परामर्श लेते। उनको एक विदेशी अंग्रेज की तुलना में सभी भारतीय विद्वान, अध्येता, मनीषी और विचारक हीन और मूर्ख लगे। तभी वह 12 जनवरी की रात को माउंटबेटन से अकेले परामर्श मांगने पहुंचे थे। उस समय माउंटबेटन ''भारत सरकार में संवैधानिक अध्यक्ष'' के रूप में गवर्नर–जनरल के पद पर आसीन था। संविधान के अंतर्गत उसे मंत्रिमंडल के

निर्णय के विरुद्ध अपना परामर्श देना निषिद्ध था। फिर भी उसने अपना परामर्श देकर संविधान की मर्यादा भंग करने का दुस्साहस किया। और उससे भी बड़ा संवैधानिक दुस्साहस तब हुआ जब गांधी जी ने गवर्नर जनरल के असंवैधानिक परामर्श को अपने प्रभाव से भारत सरकार के मंत्रिमंडल पर थोपा।

अब समझ में आता है कि दक्षिण अफ्रीका से भारत आते समय गांधीजी ने स्वयम् अपने हाथ से बनाई चप्पल जनरल स्मट्स को क्यों भेंट की। जो व्यक्ति बोअर–अंग्रेज युद्ध में यह जानते हुए भी कि अंग्रेजों का पक्ष न्यायोचित नहीं है, अंग्रेजों की सहायता करना अपना धर्म समझता था, और उस धर्म निभाने के लिए युद्ध में अंग्रेजों का ''पाख़ाना'' तक साफ़ करने को तत्पर था, वह अंग्रेज शासक को, जिसके अत्याचार से भारतीय जन त्रस्त थे, भेंट में पैर की 'चप्पल' ही बना कर दे सकता था। उसके सीने में गोली नहीं।

बी–255, सेक्टर–26,
नोएडा–201301
दूरभाष : 95120–2524911
dpsinha50@hotmail.com